Vol.12 October'18 No.3
Annual Subscription : Rs 100
Rs. 10/- per copy

ब्रह्मार्पण
BRAHMARPAN

वेदोऽखिलो
धर्ममूलम्

A Monthly publication of
Brahmasha India Vedic
Research Foundation

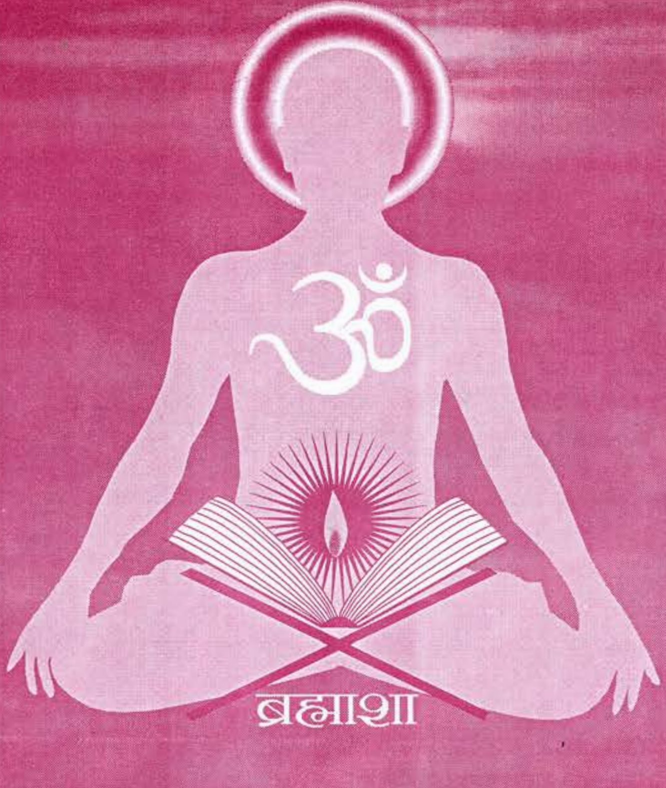

Brahmasha India Vedic Research Foundation
ब्रह्माशा इंडिया वैदिक रिसर्च फाउन्डेशन
C2A/58 Janakpuri, New Delhi - 110058

मतभेद क्यों?

–आचार्य सदानन्द शास्त्री

लक्ष्य सभी का एक है
फिर आपस में–
मतभेद क्यों?
सैद्धान्तिक छन्दों में
स्वार्थों की गन्ध है;
पार मटमैली चादर पर
सेंट की सुगन्ध है।
भीतर से कुछ
और बाहर से कुछ,
छिछालेदर करने से
लगते हैं तुच्छ।
यह बात तो बुरी है,
सबकी नजर इसी ओर
आज आ घूरी है।
हमें क्या करना था?
क्या यही करना है?
नहीं नहीं, हमें तो–
कुछ और ही करना है।
जिसके लिए ऋषिराज
विषपान कर गये,
लेखराम छुरे खा
काम जो भी कर गये।
काम वह अधूरा है,
करना उसे पूरा है।
मंजिल है दूर,
पर राह में ऐ पथिक,
क्यों बो रहा काँटे भरपूर?
सावधाान!
ये गड़ेंगे तेरे ही पाँव में,
और तेरे ही पीछे से,
आने वाली,
तेरी संतान को।
रोएँगे, कल्पेंगे।
उजड़ेंगे गाँव।
लक्ष्य शून्य होगा,
और सभी भटकेंगे,
छोड़ निज ठांव।
बताओ, तब–
क्या दोगे जवाब
ऋषि के सवाल का?

गुरुकुल आर्य समाज,
बैरगिनिया,
सीतामढ़ी (बिहार)

शोक संदेश

आर्यसमाज के लब्धप्रतिष्ठ वैदिक विद्वान्, शोधार्थी एवं लेखक डॉ. भवानीलाल भारतीय का निधन

अत्यन्त दुःख के साथ सूचित किया जाता है कि आर्यसमाज के प्रसिद्ध वैदिक विद्वान्, विचारक, वक्ता, लेखक, इतिहासकार डॉ. भवानीलाल भारतीय जी का 11 सितंबर 2018 को 90 वर्ष की आयु में निधन हो गया। वे अपने छात्र जीवन से ही आर्यसमाज से जुड़े रहे। वे पंजाब विश्व विद्यालय दयानन्द शोधपीठ के डायरेक्टर रहे। आपके निर्देशन में अनेक विद्यार्थियों ने शोधकार्य किया। वे 'ब्रह्मार्पण' पत्रिका के नियमित लेखक थे। भारतीय जी के निधन से आर्यजगत् की जो अपूरणीय क्षति हुई है उसकी पूर्ति नहीं की जा सकती। ब्रह्मार्पण परिवार उनके निधन पर गहरा शोक व्यक्त करते हुए हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता है।

संपादक ब्रह्मार्पण

BRAHMASHA INDIA VEDIC RESEARCH FOUNDATION

C2A/58, Janakpuri,
New Delhi-110058
Tel :- 25525128, 9313749812
email:deeukhal@yahoo.co.uk
brahmasha@gmail.com
Website : www.thearyasamaj.org
of Delhi Arya Pratinidhi Sabha

Sh. B.D. Ukhul
Secretary
Dr. B.B. Vidyalankar 0124-4948597
President
Col.(Dr.) Dalmir Singh (Retd.)
V.President
Dr. Mahendra Gupta *V.President*
Ms. Deepti Malhotra
Treasurer
Editorial Board
Dr. Bharat Bhushan Vidyalankar,
Editor
Dr. Harish Chandra
Dr. Mahendra Gupta
Shri Shiv Kumar Madan

लेख में प्रकट किए विचारों के लिए सम्पादक उत्तरदायी नहीं है। किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्याय क्षेत्र दिल्ली ही होगा।

Printed & Published by
B.D. Ukhul for Brahmasha India Vedic Research Foundation
Under D.C.P.
License No. F2 (B-39) Press/ 2007
R.N.I. Reg. No. DELBIL/ 2007/22062
Price : Rs. 10.00 per copy
Annual Subscription : Rs. 100.00

Brahmarpan October'18 Vol. 12 No.3
आश्विन-कार्तिक 2075 वि.संवत्

ब्रह्मार्पण
BRAHMARPAN

A bilingual Publication of Brahmasha India Vedic Research Foundation

CONTENTS

1. मतभेद क्यों? 2
-आचार्य सदानन्द शास्त्री
2. संपादकीय 4
3. सांख्य दर्शन 8
-डॉ. भारत भूषण
4. श्रीकृष्ण की राजनीति और वर्तमान उग्रवाद 9
-डॉ. अशोक आर्य
5. व्याध ने श्रीकृष्ण को मृग समझ लिया *-अश्विनी शास्त्री* 12
6 वन्दे मातरम् 15
7. आखिर देश की वन्दना में बुराई क्या है? *-वेदप्रताप वैदिक* 16
8. "शस्त्रेण रक्षिते राष्ट्रे शास्त्र चर्चा प्रवर्तते" *-राजकरनी अरोड़ा* 20
9. पहले ठीक से देश की भाषा तो बन जाए हिन्दी 26
-तेजन्द्र शर्मा
10. बोलियों से जुड़कर ही बचेगी हिन्दी (हिन्दी दिवस पर) 29
-कुमार नरेन्द्र सिंह
11. धन्य है ये भारत माँ के लाल 32
-दिव्या आर्य
12. Five Sutras For 2018 34
-Karan Singh

संपादकीय

राष्ट्रभाषा के प्रति सरकार की उदासीनता इसकी वर्तमान दशा के लिए जिम्मेदार

–डॉ. भारत भूषण विद्यालंकार

सन् 1947 में भारत आज़ाद हुआ। देश में राष्ट्रीय सरकार की स्थापना हुई। जनजीवन के सभी क्षेत्रों में चेतना का संचार हुआ। राष्ट्र के कर्णधारों ने देश के बहुमुखी विकास के लिए जहाँ ऐसा संविधान बनाया जो लोकतंत्र के प्रशासन के संचालन का माध्यम बन सके। वहीं संघ की राजभाषा के संबंध में बड़ी व्यापक और सूझ–बूझ भरी व्यवस्था की। उन्होंने देवनागरी लिपि में लिखित हिन्दी को भारत की राजभाषा बनाया। हिन्दी को राजभाषा बनाने के कई कारण थे। एक तो यह देश के बड़े क्षेत्र में जनता द्वारा बोली जाने वाली भाषा है। दूसरे, अन्य क्षेत्रों के लोग इसे आसानी से समझ लेते हैं। तीसरे, अन्य भारतीय भाषाओं के साथ इसने देश की आज़ादी में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया था। चौथे हिन्दी बहुत सरल और वैज्ञानिक भाषा है।

इसकी वर्तमान दशा के लिए भारत सरकार दोषी है। संविधान के अनुच्छेद 343(1) के खंड–2 में यह प्रावधान किया गया है कि संविधान लागू होने के समय से 15 वर्ष तक अर्थात् 1965 तक सरकार के सभी प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी का प्रयोग पूर्ववत् जारी रहेगा। बाद में 1963 में संविधान में संशोधन कर अंग्रेजी को अनिश्चित काल तक जारी रखने की अनुमति दे दी गई। फलस्वरूप केन्द्र सरकार के कार्यालयों और संसद में आज भी अंग्रेजी का

प्रभुत्व है।

राजभाषा हिन्दी के सलाहकार राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर ने कहा था कि यह सरकार का धर्म है कि वह काल की गति को पहचाने और युगधर्म की पुकार का आदर करे। दिनकर ने यह बात साठ के दशक में संसद में भाषा संबंधी चर्चा के दौरान कही थी। अपने उसी भाषण में दिनकर ने एक और अहम बात कही थी जो आज के संदर्भ में एकदम सटीक है। उन्होंने कहा था कि हिन्दी को देश में उसी तरह लाया जाए जैसे अहिन्दी भाषी लोग लाना चाहें। यही एक वाक्य आज भी देश में हिन्दी के प्रसार की नीति का आधार है।

भाषा की राजनीति

गृह मंत्रालय के राजभाषा विभाग के 27 मई के एक आदेश के बाद हिन्दी को लेकर कुछ अहिन्दी भाषी राज्यों के नेताओं ने अच्छा विवाद खड़ा कर दिया। राजभाषा विभाग ने अपने परिपत्र में कहा था कि सरकारी विभागों के अधिकारिक सोशल मीडिया एकाउंट में हिन्दी अथवा अंग्रेजी और हिन्दी में लिखा जाना चाहिए। अगर अंग्रेजी और हिन्दी में लिखा जा रहा है तो हिन्दी को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। यही कहीं नहीं कहा गया कि हिन्दी का ही प्रयोग होना चाहिए। आखिर इसमें हिन्दी थोपने जैसी बात कैसे सामने आ गई। नेताओं के साथ यही परेशानी है कि वे किसी भी मामले की ऐतिहासिकता की पृष्ठभूमि में कोई बात नहीं कहते। वे वोट बैंक पक्का करने की दृष्टि से बयानबाजी करते हैं। लोकसभा चुनाव के दौरान चैन्नै के हिन्दी भाषी बहुल क्षेत्र में हिन्दी में पोस्टर लगवाने वाले डीएमके नेता करुणानिधि को हिन्दी विरोध में राजनीतिक संभावना नजर आती थी। साठ के दशक में जब दक्षिण

भारत में हिन्दी के विरुद्ध हिंसक आंदोलन हुए थे। तब भी और उसके पहले भी सबकी राय यही बनी थी कि हिन्दी का विकास और प्रसार अन्य भारतीय भाषाओं को साथ लेकर चलने से ही होगा। इसे थोपने से नहीं। महात्मा गाँधी हिन्दी के प्रबल समर्थक थे और इसको राष्ट्रभाषा के तौर पर देखना भी चाहते थे, लेकिन उन्होंने भी कहा था कि हिन्दी का उद्देश्य यह नहीं है कि वह प्रान्तीय (प्रादेशिक) भाषाओं की जगह ले ले।

हमारा देश विविधताओं से भरा है। यहाँ दर्जनों भाषाएँ और सैकड़ों बोलियाँ हैं। अतः यहाँ एक भाषा का सिद्धांत लागू नहीं हो सकता। इतना अवश्य है कि राजकाज की एक भाषा आवश्यक है। स्वाधीनता से पूर्व और उसके बाद हिन्दी को राजभाषा का दर्जा देने का प्रयास हुआ, परन्तु अन्य भारतीय भाषाओं के विरोध के कारण यह संभव नहीं हो सका। हिन्दी राष्ट्रभाषा तो बनी परन्तु अंग्रेजी का दबदबा बना रहा। जनता के व्यवहार की भाषा और शासन की भाषा अलग रही। न तो हिन्दी को उसका अधिकार मिला और न ही अन्य भारतीय भाषाओं को उचित प्रतिनिधित्व मिला। हिन्दी के विरुद्ध भारतीय भाषाओं को खड़ा करने में अंग्रेजी लॉबी (समर्थकों) ने बड़ी भूमिका अदा की।

इतना होते हुए भी हिन्दी बिना किसी सरकारी बैसाखी के स्वयं बड़ा सफर तय कर चुकी है। वह पूर्व से दक्षिण तक पहुँच चुकी है। यह धीरे-धीरे पूर्वोत्तर के राज्यों में भी लोकप्रिय हो रही है। यदि सरकार वास्तव में हिन्दी के विकास की इच्छुक है तो उसे सभी भारतीय भाषाओं के बीच संवाद को बढ़ाना होगा। एक भाषा से दूसरी भाषा के बीच अनुवाद को गति देनी होगी। सभी भाषा-भाषियों के मन

में यह विश्वास बैठाना होगा कि हिन्दी के विकास से उनका भी विकास है।

कृष्ण जन्माष्टमी : तीन सितंबर को हमने कृष्ण जन्माष्टमी पर्व मनाया। भारत का सौभाग्य है कि यहाँ मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम और योगेश्वर श्रीकृष्ण जैसे महापुरुषों का जन्म हुआ। श्रीकृष्ण के जीवन का लक्ष्य सज्जनों की रक्षा और दुर्जनों का नाश करना था। इन महापुरुषों के जीवन लोक कल्याण के लिए थे। श्रीकृष्ण का जीवन जन्म से मृत्यु पर्यन्त अत्यधिक कठिनाइयों से भरा था। श्रीकृष्ण के उदात्त चरित्र पर टिप्पणी करते हुए महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश में लिखा है:-

"श्रीकृष्ण का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उनका गुण, कर्म, स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश है जिसमें कोई अधर्म का आचरण श्रीकृष्ण ने जन्म से मरण पर्यन्त बुरा काम किया हो ऐसा नहीं लिखा। कौरवों और पांडवों के बीच युद्ध में श्रीकृष्ण ने धर्म और न्याय का पक्ष लिया तथा अधर्म और अन्याय के विरुद्ध संघर्ष किया। युद्ध में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को क्षत्रिय धर्म का पालन करने और नपुंसकता का परित्याग करने का उपदेश दिया। पुराणों ने श्री कृष्ण के उज्ज्वल चरित्र को विकृत और कलंकित कर दिया। हमें उस पर ध्यान न देकर श्रीकृष्ण के निर्मल, प्रेरणादायक, स्मरणीय, अनुकरणीय चरित्र का पालन करना चाहिए।

'Brahmarpan' expresses its deep condolences at the sad demise of Vedic Scholar Dr. Sunder Lal Kathuria former president of B Block Arya Samaj and at the bereavement of the wife of Col. (Dr.) Dalmir Singh, Trustee of Brahmasha India Vedic Research Foundation Janakpuri on 30th September, 2018.

सांख्य दर्शन (अध्याय-1, सूत्र-129)

-डॉ. भारत भूषण विद्यालंकार

द्रष्टा आत्मा का कर्तृत्व मुख्य रूप से माना जा सकता है, तब बुद्धि आदि में कर्तृत्व का व्यपदेश क्यों किया जाता है। सूत्रकार इसका समाधान निम्नलिखित सूत्र में करते हैं-

उपरागात् कर्तृत्वं चित्सान्निध्याच्चित्सान्निध्यात् ।।129।।

अर्थ- (उपरागात्) उपराग से (बुद्धि में) (कर्त्तत्वं) कर्तृत्व है (चित्सान्निध्यात्) चेतन तत्व की समीपता (सान्निध्य) होने से।

भावार्थ- परिणामी होने के कारण बुद्धि में प्रसवधर्मित्व रूप कर्तृव्य स्वतः रहता है। यदि दृष्ट्त्व रूप कर्तृत्व का भान बुद्धि में संभव हो तो वह चेतन आत्मा के सान्निध्य से, बुद्धि के चैतन्य प्रभावित होने पर संभव हो सकता है। दृष्ट्त्व अथवा अधिष्ठातृत्व रूप कर्तृत्व चेतन में संभव है, अचेतन में नहीं। यदि बुद्धि आदि अचेतन में इस प्रकार का औपचारिक कर्तृत्व कदाचित् देखा जाए तो वह चेतन के सान्निध्य से माना जा सकता है क्योंकि बुद्धिगत सारी प्रवृत्तियों की प्रेरणा आत्म चैतन्य से प्राप्त होती है। बुद्धि में प्रसवधर्मित्व रूप कर्तृत्व तथा आत्मा में अधिष्ठातृत्व रूप कर्तृत्व स्वतः है। इस विषय का विस्तृत विवेचन "सांख्य सिद्धांत" के 'पुरुष' प्रकरण में जीवात्मा के कर्तृत्व प्रसंग में किया गया है।

प्रस्तुत प्रसंग में इस विवेचन की ओर अच्छी तरह ध्यान रखना चाहिए कि बुद्धि का परिणाम दो प्रकार का होता है। एक अहंकार आदि के रूप में, दूसरा विषयाकार रूप में। दूसरे परिणाम को सांख्य के मत में बुद्धि वृत्ति कहा जाता है। पहले परिणाम का प्रयोजक ईश्वर चित्सान्निध्य है और दूसरे का जीवात्म चित्सान्निध्य। इस सूत्र में चित्सान्निध्य की आवृत्ति अध्याय की समाप्ति की सूचक है।

इस प्रथम अध्याय की समाप्ति के बाद सांख्य दर्शन का आगे अध्ययन फिलहाल रोक दिया है। अभी पहले अध्याय पर मनन-चिन्तन करें। भविष्य में इस पर आगे अध्ययन जारी रखने पर विचार किया जा सकता है।।129।।

दी हिबिस्कस,
बिल्डिंग-5, एपार्ट नं.-9बी
सेक्टर-50, गुड़गाँव (हरियाणा) 122009
फोन-0124-4948597

श्रीकृष्ण की राजनीति और वर्तमान उग्रवाद

–डॉ. अशोक आर्य

योगीराज श्रीकृष्ण के जन्म से पूर्व लगभग एक सहस्र वर्ष पूर्व ही इस देश की अधोगति आरम्भ हो गई थी। योगीराज ने अपनी नीति के प्रयोग से इस अधोपतन को समाप्त करने का भरपूर प्रयास किया। यह उनकी राजनीति का ही परिणाम था कि जो भारत देश महाभारत काल में ही विदेशियों का गुलाम होने की अवस्था में था जबकि वह देश चार हजार वर्ष बाद गुलाम हुआ। श्रीकृष्ण के पश्चात् भी हमारे जिस राजनेता ने उनकी नीति का अनुसरण किया, इतिहास में उसने स्थायी स्थान पाया।

भारतीय इतिहास में महाभारत के पश्चात् हम चाणक्य को प्रथम राजनेता के रूप में पाते हैं जिसने श्रीकृष्ण के आदर्श राज नियमों को अपनाया तथा चन्द्रगुप्त को आगे रखकर भारत की सीमाओं को मजबूत किया। फिर शिवाजी महाराज ने उसी नीति को अपनाते हुए दक्षिण भारत तथा बन्दा वैरागी, हरिसिंह नलवा, महाराजा रणजीत सिंह आदि ने उत्तर भारत में इसी राजनीति का अवलम्बन किया। इसीका परिणाम था कि ये महापुरुष सदा अपने सभी प्रकार के अभियानों में सफल हुए। भारत स्वाधीन हुआ। उस समय देश अति विकट अवस्था में था। इस अवस्था में देश पुनः बंट कर नष्ट हो जाता यदि कृष्ण नीति को अपना कर सरदार पटेल देसी रियासतों की लगाम न कसते।

इस प्रकार के कृष्ण को यदि महर्षि दयानन्द ने अपने शब्दों में इस प्रकार कहा कि "कृष्ण ने जन्म से मरण पर्यन्त कोई पाप नहीं किया" तो कोई अतिशयोक्ति नहीं की। महाभारत का वह काल था जिस में ब्राह्मण अपनी मर्यादाओं को भूल रहे थे। जन्म को जाति का आधार बनाने लगे थे। तभी तो एकलव्य व कर्ण को समान शिक्षा देने में बाधा खड़ी की गई। यह वह समय था जब क्षत्रियों की मर्यादाएँ समाप्त हो रहीं थीं। तभी तो श्रीकृष्ण ने वैदिक मर्यादाओं को स्थापित करने का

प्रयास किया। देश कौरव व पाण्डव दो दलों में बंटा था। राष्ट्रीय भावना के लोग पाण्डवों के साथ थे तथा विदेशी शक्तियाँ कौरवों के साथ थीं। तभी तो योगीराज ने पाण्डवों का पक्ष लेकर न केवल देश को सुरक्षित ही नहीं किया अपितु खण्डित देश को एक केन्द्रीय संगठन भी दिया। इस संगठन की कमान युधिष्ठिर को दी।

श्री कृष्ण की राजनीतिक सूझ इसी से प्रकट होती है कि वह राजनीति में दया के स्थान पर जैसे को तैसा के मार्ग पर चलने वाले थे। यही वह कारण था कि जब कौरव सेना ने सभी लड़ाई के नियमों का उल्लंघन करते हुए बालक वीर अभिमन्यु का वध कर दिया तो कृष्ण ने उनके साथ वैसा ही व्यवहार करने का निर्देश देकर कुछ भी तो गलत नहीं किया। इसी नीति के माध्यम से ही तो कर्ण, भीष्म पितामह, अश्वत्थामा, कालयवन आदि यहाँ तक कि अन्त में दुर्योधन को भी मार कर या पराजित कर अपनी अद्भुत राजनीति का परिचय दिया। यह ठीक भी है। राजनीति में पराजय का नाम मृत्यु है तथा जय का नाम है स्वर्गिक आनन्द। जीतना ही धर्म है और हारना अधर्म। यही कारण है कि जब सन्धि का सन्देश लेकर श्रीकृष्ण कौरव दरबार में गए तो पहले से ही ऐसी तैयारी कर गए थे कि उनके साथ छल न होने पावे। स्वयं तो कौरव दरबार में खड़े थे किन्तु उनके रक्षकों ने पूरे क्षेत्र को घेर रखा था। जब कृष्ण जी के ओजस्वी विचारों से कौरव दल के सभी लोग उनके पक्ष में आ गए तो दुर्योधन ने उन्हें हिरासत में लेने की सोची किन्तु दूरदर्शी कृष्ण की पहले से ही की हुई तैयारी यहाँ काम आई। धूर्त दुर्योधन उनका बाल भी बाँका न कर सका।

यह कृष्ण जी की नीतियों का ही परिणाम था कि यह देश जो उस समय विदेशियों की गुलामी झेलने की अवस्था में पहुँच चुका था, को आपने सुदृढ़ कर न केवल इससे बचाया अपितु इसके लगभग चार हजार वर्ष बाद भी यह देश बचा ही रहा।

आज जिस प्रकार हमारा भारत देश विदेशी उग्रवाद की चपेट में फँसा है ठीक इसी प्रकार मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के शासन से पूर्व तथा युधिष्ठिर के शासन से पूर्व भी उग्रवाद व विदेशी लोगों के कोप से ग्रसित था। राम व कृष्ण दो ऐसे महान् नेता व राजनीतिकार इस देश को प्राप्त हुए जिनकी सफल राजनीति ने उस समय के विदेशी उग्रवाद को समूल नष्ट कर एक ठोस व मजबूत केन्द्रीय सत्ता इस देश में स्थापित कर इस देश को ऐसी सुदृढ़ पृष्ठभूमि दी कि फिर हजारों वर्षों तक उग्रवाद यहाँ अपना फन न उठा सका। आज ठीक वैसी ही अवस्था से देश निकल रहा है। प्रतिदिन यहाँ न केवल विदेशियों की घुड़कियाँ मिल रही हैं। इसके साथ ही साथ प्रतिदिन उग्रवादियों द्वारा किये जा रहे बम धमाकों, गोलियों आदि के कारण हजारों भारतीय मारे जा रहे हैं। हमारे राजनेता अपनी दल गत राजनीति में इतने उलझे हुए हैं कि देश के इस महान् संकट के समय भी एक होकर लड़ने के स्थान पर एक दूसरे को नीचा दिखाने का प्रयास कर रहे हैं। ऐसी अवस्था में देश का अवनति की ओर जाना निश्चित है। इसी का परिणाम है कि कहीं अतिवृष्टि हो रही है और कहीं किसी के गोदाम भरे हुए हैं तो किसी को दो जून का भोजन भी नहीं मिल रहा। सभी स्वार्थ के वशीभूत हो रहे हैं।

आज आवश्यकता ही नहीं बल्कि इस विदेशी प्रायोजित आतंकवाद पर काबू पाकर देश को ठोस आधार देने की है। यह तभी सम्भव होगा जब हमारे राजनेता श्रीकृष्ण जी की राजनीति को न केवल समझेंगे अपितु इसे व्यवहार में लायेंगे। यही ही एकमात्र हल है। इस उग्रवाद के मुँह से देश को निकाल कर पुनः परम वैभव पर लाने का। आर्य समाज ही एकमात्र संस्था है जो यह मार्ग वर्तमान स्वार्थी राजनेताओं को दिखा सकता है। अतः आर्य समाजियों को मजबूरी से इस राजनीति को अपनाना चाहिए।

105 शिप्रा अपार्टमेन्ट, कौशाम्बी–201010
गाजियाबाद

व्याध ने श्रीकृष्ण को मृग समझ लिया

-अश्विनी शास्त्री

जब हम छोटे थे, तब माँ अक्सर हमें श्रीराम और श्रीकृष्ण के जीवन से जुड़ी कथाएँ सुनाया करती थीं। वे कभी-कभी बताती थीं कि किस तरह श्रीकृष्ण की मृत्यु एक व्याध के द्वारा उनके पैर में बाण मारने के कारण हुई थी। पिछले दिनों अचानक मुझे किसी मित्र से मालूम हुआ कि गुजरात में सोमनाथ के पास सचमुच एक छोटा सा गाँव है जिसे 'भल्लक तीर्थ' के नाम से जाना जाता है। इसके बारे में ऐसी मान्यता है कि कृष्ण के पैर में व्याध का बाण वहीं पर लगा था।

मुझे याद आया कि माँ वह कथा सुनाते समय किस तरह खो जाया करती थीं। लेकिन उन्हें यह पता नहीं था कि उस पौराणिक कथा से जुड़ा कोई तीर्थ स्थल भी है। इसलिए सोचा था कि माँ को वहाँ ले जाना चाहिए। पूछा तो वह बड़ी खुश हुईं और उन्होंने वह स्थान देखने की इच्छा जाहिर कर दी। मैंने ऑफिस से एक सप्ताह की छुट्टी ले ली और दिल्ली से वेरावल तक का टिकट भी बुक करवा लिया। वेरावल अहमदाबाद से आगे पड़ता है।

निर्धारित समय पर मैं अपनी माँ और परिवार के अन्य सदस्यों के साथ यात्रा पर निकल पड़ा। एक दिन अहमदाबाद में रुक कर वहाँ हमने अक्षरधाम मंदिर में भगवान स्वामिनारायण के दर्शन किए। फिर उसी रात सोमनाथ एक्सप्रेस से वेरावल के लिए चल पड़े। वहाँ हम सुबह-सुबह पहुँचे। स्टेशन के पास ही हमें एक अच्छा होटल मिल गया। चूँकि उस पवित्र स्थल को देखने की उत्सुकता हम सब में बराबर बनी हुई

थी, इसलिए नाश्ता करके हमने टैक्सी पकड़ी और निकल पड़े। हम चंद घंटों में ही भल्लक तीर्थ पहुँच गए।

एक किंवदंती के अनुसार महाभारत का युद्ध समाप्त होने के बाद लगभग 36 वर्षों तक भगवान कृष्ण ने द्वारका में निवास किया था। महाभारत के युद्ध में परिजनों के विनाश और यदुवंश की समाप्ति से व्यथित श्रीकृष्ण एक दिन द्वारका के निकट ही स्थित एक वन में पहुँच गए। विश्रांत होने के कारण वे एक वृक्ष के नीचे लेट गए। उन्हें लेटा देख शिकार के लिए घूम रहे एक व्याध ने उन्हें दूर से मृग समझा और उन पर बाण चला दिया।

इस घटना का उल्लेख महर्षि व्यास ने महाभारत में इस प्रकार किया है:

स केशवं योगयुक्तं शयानं, मृगाशंकी लुब्धकः सायकेन।
जराविध्यत्पादतले त्वरावांस्तं, चाभितस्तज्जिघृक्षुर्जगाम।।
अथापश्यत्पुरुषं योगयुक्तं, पीताम्बरं लुब्धकोनेकबाहुं
मत्वात्मानमपराद्धं स तस्य, जग्राह पादौ शिरसा चार्तरूपः।।

निकट आने पर जब उस व्याध ने देखा कि वह बाण कृष्ण के पैर में लग गया है तो उसे अपनी भूल का अहसास हुआ और वह तुरंत ही पश्चात्ताप करते हुए कृष्ण के चरणों में गिर पड़ा। कृष्ण ने उसे समझाते हुए कहा कि इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है। ऐसा होना तो मैंने स्वयं ही निश्चित किया हुआ था। तुम विलाप मत करो और इस घटना को दैव इच्छा मानकर शान्त हो जाओ।

भल्लक तीर्थ में एक बहुत पुराना पेड़ है। स्थानीय लोगों का

मानना है कि वह पाँच हजार वर्ष पुराना है और उसी के नीचे कृष्ण को बाण लगा था। बाण लगने के कारण गोलोक प्रस्थान कर चुके भगवान श्रीकृष्ण का अंतिम संस्कार पास ही में त्रिवेणी घाट के पास, जहाँ हिरण्या, कपिला और सरस्वती नदियाँ एक साथ बहती थीं, एक घाट पर किया गया। इस घाट को 'देहोत्सर्ग' घाट भी कहा जाता है। इस विषय में एक रोचक तथ्य यह भी है कि इस देहोत्सर्ग के कारण आसपास की अहीर महिलाएँ कृष्ण की मृत्यु के प्रति शोक प्रकट करने के लिए आज भी श्याम वस्त्र धारण करती हैं। गुजरात के पश्चिमी तट पर द्वादश ज्योतिर्लिंगों में से एक सुप्रसिद्ध सोमनाथ मंदिर के पास ही स्थित 'द्वारका' नगरी को भी तीर्थ की संज्ञा दी गई है। हिन्दुओं के प्रसिद्ध चार धामों–बद्रीनाथ, केदारनाथ, द्वारका और पुरी में इस तीर्थ की गणना की गई है। महाभारत के अनुसार कौरव–पांडवों के समय में द्वारका एक महत्त्वपूर्ण नगरी के रूप में प्रसिद्ध थी। कहा जाता है कि श्रीकृष्ण ने ही इसे बसाया था और वही यहाँ के राजा थे। उस समय के अनेक महारथी और योद्धा श्रीकृष्ण से सामरिक नीतियों के विषय में परामर्श करने के लिए अक्सर यहाँ आया करते थे।

महाकवि माघ रचित 'शिशुपाल वध' में इस द्वारका नगरी की सुंदरता और भव्यता का वर्णन करते हुए कहा गया है:

मध्येसमुद्रं ककुभः पिशंगीः, या कुर्वती कांचनवप्रभासा।
तुरंगकांतामुखहव्यवाह, ज्वालेव भित्वा जलमुल्ललास।।

(शिशुपाल वध सर्ग–3 श्लोक 33)

वन्दे मातरम्

सुजलाम् सुफलाम् मलयज शीतलाम्
शस्य श्यामलाम् मातरम्
वन्दे मातरम्।
शुभ्र ज्योत्स्नां पुलकित यामिनीम्
फुल्ल कुसुमित द्रुमदल शोभिनीम्
सुहासिनीम् सुमधुर भाषिणीम्
सुखदाम् वरदाम् मातरम्।।
वन्दे मातरम्।
कोटि–कोटि कंठ कलकल निनाद कराले
कोटि–कोटि भुजैर्धृत खरकरवाले
अबला कनो मां एतो बले
बहुबल धारिणीम् नमामि तारिणीम्
रिपुदल वारिणीम् मातरम्।
वन्दे मातरम्।
तुमि विद्या तुमि धर्म
तुमि हृदि तुमि मर्म
त्वं हि प्राणाः शरीरे
बाहु ते तुमि मा शक्ति
हृदे तुमि मा भक्ति
तोमारी प्रतिमा गड़ि मन्दिरे मन्दिरे।।
वन्दे मातरम्।
त्वं हि दुर्गा दशप्रहरणधारिणी
कमला कमलदलविहारिणी
वाणी विद्यादायिनी, नमामि त्वां, नमामि कमलाम्
अमलाम्, अतुलाम्, सुजलाम्, सुफलाम्, मातरम्।।
वन्दे मातरम्।
श्यामलाम्, सरलाम्, सुस्मिताम्, भूषिताम्
धारणीम्, भरणीम्, मातरम्।।
वन्दे मातरम् ।।

आखिर देश की वन्दना में बुराई क्या है?

–वेदप्रताप वैदिक

वन्देमातरम् पर कुछ मुसलमानों की आपत्ति और उस पर कांग्रेस का रवैया आज़ादी के बाद की सबसे अधिक दुःखद घटनाओं में से है। यह घटना मुसलमानों और कांग्रेसियों के लिए कितनी अधिक नुकसानदेह साबित होगी, उसका अन्दाजा शायद उन्हें अभी नहीं है। राष्ट्रध्वज, राष्ट्रीय संविधान आदि ऐसे सर्वमान्य प्रतीक होते हैं जिन्हें अपनी सभी पहचानों से ऊपर माना जाता है। कोई राष्ट्र इस्लामी हो या ईसाई, साम्यवादी हो या पूँजीवादी, धर्मसापेक्ष हो या धर्मनिरपेक्ष, वह अपनी राष्ट्रीय अस्मिता के प्रतीकों को सर्वोपरि मानता है। इन प्रतीकों पर प्रश्नचिह्न लगाना देशद्रोह माना जाता है।

लेकिन वन्देमातरम् पर प्रश्न चिह्न लगाने वाले कुछ गुमराह मुसलमानों और उन्हें छूट देने वाले कांग्रेसियों को देशद्रोही कहना उचित नहीं। हाँ, बुद्धिद्रोही जरूर कह सकते हैं। वन्देमातरम् का विरोध जिस आधार पर मुसलमान कर रहे हैं, वह आधार ही निराधार है। वन्देमातरम् में इस्लाम या मुसलमानों की कोई आलोचना या निन्दा होना तो बहुत दूर की बात है, उनका जिक्र तक नहीं है। इसमें मातृभूमि की वन्दना की बात कही गई है, पूजा की नहीं। अगर पूजा की बात भी कही जाती, तो उसमें गलत क्या था? यदि मातृभूमि पूज्य है, तो भगवान और अल्लाह परम पूज्य हैं। दोनों में कोई विरोध नहीं है। वन्देमातरम् के अन्तिम पद में दुर्गा, कमला और सरस्वती का जिक्र आया है, लेकिन कहीं भी उनकी पूजा करने की बात नहीं कही गई है। सिर्फ यह

कहा गया है कि हे मातृभूमि, 'त्वं हि दुर्गा दशप्रहरणधारिणी, कमला कमलदलविहारिणी, वाणी, विद्यादायिनी' यानि कवि ने मातृभूमि की तुलना दुर्गा (शक्ति), कमला (सम्पदा), वाणी (ज्ञान) से की है। यदि राष्ट्रगीत में मातृभूमि को शक्ति, सम्पदा और ज्ञान का मूर्तिमन्त रूप कहा जाए, तो इसमें इस्लाम विरोधी कौन सी बात है? मातृभूमि के आराधन की बात बांग्लादेश और इन्डोनेशिया जैसे लगभग सभी इस्लामी देशों के राष्ट्रगान में भी आई है। यदि भारत के राष्ट्रगीत में दुर्गा, लक्ष्मी और सरस्वती की उपमा का इस्तेमाल नहीं होगा, तो क्या जॉन ऑफ आर्क, क्वीन विक्टोरिया या हजरते आश्या का होगा? ये भी महान महिलाएँ हुई हैं, लेकिन भारतीय सन्दर्भ में उनकी प्रासंगिकता नगण्य है। इसके अलावा भारत के राष्ट्रगीत में शुरु के केवल दो पद लिए गए हैं। बाद के वे पद लिए ही नहीं गए जिनमें इन देवियों के प्रतीकों का इस्तेमाल किया गया है। फिर भी वन्देमातरम् को इस्लाम विरोधी कहना कहाँ तक तर्कसंगत है? यह खेद की बात है कि 1937 में कांग्रेस ने और 1947 में संविधान सभा ने पूरे वन्देमातरम् की बजाय उसके सिर्फ पहले दो पदों को ही राष्ट्रगीत माना। हमारे अंग्रेजीदां नेता बंकिमचन्द्र के इस महान गीत का सही अर्थ समझ नहीं पाए और वे मुस्लिम लीग के मिथ्या प्रचार से डर गए।

वन्देमातरम् बंकिमचन्द्र के उपन्यास 'आनन्द मठ' में उन साधुओं ने गाया है, जो बगावत कर रहे थे। संयोग की बात है कि जिस शासक के विरुद्ध वे बगावत कर रहे थे, वह मुसलमान था। मान ले कि वह हिन्दू होता या अंग्रेज होता, ईसाई या यहूदी होता, तो क्या यही गीत उसके विरुद्ध भी

नहीं गाया जाता? इसमें इस्लाम या मुसलमान का विरोध नहीं है, एक विदेशी आक्रान्ता-अत्याचारी शासक की तरफदारी क्यों करें? क्या सिर्फ इसीलिए कि वह अपने नाम से मुसलमान था? उपन्यास के एक दुष्ट पात्र के कारण भारत के करोड़ों देशभक्त मुसलमान अपने आपको सन्देह के कटघरे में क्यों खड़ा करें? इसके अलावा यह गीत 1876 में लिखा गया, यानी आनन्द मठ के प्रकाशित होने के सात साल पहले। इसका अपना स्वतन्त्र अस्तित्व और महत्त्व है। इसे सिर्फ इस उपन्यास की कहानी का हिस्सा मानना इस महान गीत के साथ अन्याय करना है। यह गीत इसलिए भी महानतम पद पर पहुँच गया कि इसे गा-गाकर हजारों लोगों ने मृत्यु का वरण किया, लाखों लोगों ने जेल काटी और करोड़ों लोगों ने स्वाधीनता संग्राम की प्रेरणा ली।

केवल मुस्लिम लीग ने इस गीत का विरोध किया, पहले नासमझी के कारण और फिर जानबूझकर! कांग्रेस के हर अधिवेशन का समारम्भ इसी गीत से होता था। 1893 में रवीन्द्रनाथ टैगोर ने कोलकाता कांग्रेस में इसे गाया और 1905 में महात्मा गाँधी की परमप्रिय मित्र सरला देवी चौधरानी ने इसे लाहौर अधिवेशन में गाया। बाद में कई वर्षों तक पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर इसे गाते रहे। 1923 में कांग्रेस अध्यक्ष मौलाना मुहम्मद अली ने वन्देमातरम् का विरोध किया कि इस्लाम में संगीत वर्जित है। पलुस्कर ने खड़े होकर कहा, यह कांग्रेस अधिवेशन का पण्डाल है, कोई मस्जिद नहीं है। कांग्रेस अध्यक्ष यदि अपने जुलूस में संगीत का रस लेते रहे तो उन्हें यहाँ ऐतराज क्यों है? वास्तव में उन्हें ऐतराज न तो संगीत से था और न ही वन्देमातरम् से।

वे खफा थे गाँधी और कांग्रेस की लोकप्रियता से। वन्देमातरम् का विरोध उनके अलगाववाद का मूलमन्त्र था। अब भी उसी मुस्लिम लीगी मानसिकता से चिपके रहना कहाँ तक उचित है? यदि यही मानसिकता पनपती रही तो मुसलमानों का ही नुकसान होगा।

यह मुस्लिम लीगी मानसिकता है, मुस्लिम मानसिकता नहीं। यदि यह मुस्लिम मानसिकता होती तो स्व. बिस्मिल्लाह खान बाबा विश्वनाथ के मन्दिर में बैठकर 'वैष्णव जन को ने कहिए' क्यों बजाते और सारे मुसलमान कहते कि खान साहब के शव को बन्दूकों की सलामी क्यों दी गई, यह तो जड़-पूजा है, बुतपरस्ती है, इस्लाम विरोधी हरकत है। पाकिस्तान के नागरिक होते हुए भी मेंहदी हसन गाने के पहले सरस्वती वन्दना क्यों करते हैं? मुसलमान होने का मतलब अपनी परम्परा से पूरी तरह कट जाना नहीं है। इक़बाल को क्या जरूरत थी, यह कहने की कि 'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा'? उन्होंने राम को 'इमामे हिन्द' क्यों कहा? रसखान ने चाँदी के महल कन्हैया पर क्यों निछावर किए? ताज बीबी ने यह क्यों कहा कि 'लाम' के मानिन्द हैं गेसू मेरे घनश्याम के?' क्या इक़बाल, रसखान, ताज बीबी आदि इस्लाम विरोधी थे?' मूर्तिपूजा का विरोध मुसलमानों से ज्यादा आर्यसमाजी करते हैं, लेकिन क्या उन्होंने कभी वन्देमातरम् पर उंगली उठाई।

मुसलमान होने का मतलब अरबों की कार्बन कॉपी बनना नहीं है या खुद को घसीटकर सत्रहवीं सदी की कोठरी में फेंक देना नहीं है। जो लोग वन्देमातरम् का विरोध कर रहे हैं, वे अक़्ल के दुश्मन तो हैं ही, मुसलमानों के भी दुश्मन हैं।

"शस्त्रेण रक्षिते राष्ट्रे शास्त्र चर्चा प्रवर्तते"
"शस्त्र द्वारा रक्षित राष्ट्र में ही शास्त्र" *(संस्कृत, साहित्य, कला, शिक्षा) का विकास हो सकता है"*

-राजकरनी अरोड़ा

उपरिलिखित सूत्रवाक्य आज समय की माँग है सम-सामयिक ही नहीं, यह तथ्य एक सार्वकालिक और सार्वभौमिक सत्य है। "वीर भोग्या वसुन्धरा" यह धरती कायरों-कमज़ोरों की नहीं। वीर जातियाँ ही इतिहास की रक्षा करती हैं, इतिहास रचती भी हैं। कापुरुषों-दुर्बलों को तो समय इतिहास के पृष्ठों में लपेटकर कूड़े दान में फेंक देता है। शक्ति द्वारा श्रेयस् की प्राप्ति होती है। शक्ति और श्रेयस् एक दूसरे के पूरक ही नहीं, एक दूसरे पर अवलम्बित भी हैं। शस्त्र और शास्त्र में विभाजन रेखा खींचने वाले, व्यक्ति राष्ट्र के सर्वतोमुखी विकास में कभी सफल नहीं हो सकते।

कृष्ण शक्ति के साथ अर्जुन शक्ति भी अनिवार्य है। योद्धा अर्जुन के गांडीव के बिना योगेश्वर कृष्ण का कर्मयोग का उपदेश **"तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धायकृत निश्चयः"** और **"युद्धाय युज्यस्व"** का कोई अर्थ नहीं। अन्याय, अत्याचार, अधर्म, उत्पीड़न का प्रतिरोध करके न्याय और धर्म की विजय के लिए अर्जुन की गांडीव-शक्ति अनिवार्य और अपरिहार्य है। जब-जब इस तथ्य की उपेक्षा हुई हम पराजित हुए, अपमानित हुए, पीड़ित और प्रताड़ित हुए। "अहिंसा परमोधर्मः" वैदिक धर्म में अभिप्रेत नहीं। यह तो अन्याय और अत्याचार को प्रश्रय देना है। अहिंसा निरपवाद नहीं। मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र द्वारा दानव-कुल का हनन करके रामराज्य की स्थापना, योगीराज श्री कृष्ण द्वारा कंस वध, शिशुपाल और जरासन्ध का वध करके न्याय की स्थापना की संगति अहिंसा

से नहीं बैठती। गीता में श्रीकृष्ण का "विनाशाय च दुष्कृताम्" का प्रण भी असंगत हो जाता है। हम "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या" का जाप करते रहे और विदेशी आक्रांताओं ने हमारी भूमि पर अधिकार करके हमारी सभ्यता-संस्कृति को ध्वस्त कर दिया। अतीत के गौरव का विस्मरण करके, आत्महीनता से ग्रसित होकर हम अपनी ही संस्कृति से घृणा करने लगे। इसी दौर्बल्य के कारण पश्चिमी शक्तियों के नुकीले कदमों ने भारत माँ के वक्षःस्थल को क्षत विक्षत कर दिया, लहूलुहान कर दिया। राजनीतिक दृष्टि से पराधीन सामाजिक दृष्टि से अपमानित, सांस्कृतिक दृष्टि से वंचित, आर्थिक दृष्टि से पीड़ित, शोषित, निःसहाय, भारतवासी इसी को अपनी नियति मान बैठे।

समय-समय पर वीर सपूतों ने इस पराधीनता का प्रतिरोध भी किया, अत्याचारों के विरुद्ध संघर्ष का बिगुल फूँका, वीर-पुंगव महाराणा प्रताप, मराठा वीर शिवाजी, पंजाब के रण बाँकुरे बहादुर सिपाहियों ने स्वातन्त्र्य वेदी पर अपने प्राणों की बलि चढ़ा दी। 1857 के स्वातन्त्र्य समर के वीर सेनानियों के बलिदान की रोमांचक गौरव-गाथाएँ मुर्दादिलों में भी प्राण फूँकती हैं। यद्यपि इस क्रान्ति को क्रूरता से कुचला गया तथापि असन्तोष और विरोध के स्वर दबे नहीं, निरन्तर तीव्र से तीव्रतर होते गए। राष्ट्रीय भावनाओं की आँधी जोर पकड़ती गई। बंगाल, पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र के वीर सपूतों ने स्वातंत्र्य-दीपक की वर्तिका को निज समतैल से सिंचित किया। आर्यसमाज के आन्दोलन ने ऐसे क्रांतिवीर उत्पन्न किए जिन्होंने विदेशी शासन की जड़ें उखाड़ने के लिए सिर पर कफन बाँध लिए। महाराष्ट्र में चाफेकर बन्धुओं और सावरकर बन्धुओं के बलिदान, त्याग, राष्ट्र के प्रति निष्ठा और दृढ़ संकल्प ने स्वातंत्र्य आन्दोलन में नए प्राण फूँक दिए। अण्डेमान के सैलुलर कारागार में असह्य कष्ट, क्रूरतम

यातनाएँ सहनेवाले विनायक दामोदर सावरकर, उनके बड़े भाई गणेश दामोदर सावरकर, वामन राव जोशी, इन्दुभूषण, उल्हास करदत्त, नानी गोपाल जैसे क्रांतिवीरों ने राष्ट्र प्रेम और बलिदान के अप्रतिम उदाहरण प्रस्तुत किए। सरफरोशी की तमन्ना लिए, बसन्ती चोला पहने आजादी के परवानों ने हँसते-हँसते फाँसी के फन्दों को चूमा। स्वातन्त्र्य देवी के दर्शन "बिना खड्ग और ढाल का कमाल" नहीं है। असंख्य बहुमूल्य प्राणों की बलि दी गई।

आज हम यह सोचने को विवश हैं कि क्या इन दीवानों ने ऐसे स्वातन्त्रय भारत की कल्पना की थी। सत्तालोलुप, बेईमानी के रोग से पीड़ित, जनता से कटी इन राजनीतिक पार्टियों ने उन क्रांतिवीरों का क्या मूल्यांकन किया? बल्कि उनके किए कराए पर पानी फेर दिया।

देशहित के प्रति गाफिल आज की राजनीतिक पैंतरेबाजी ने देश की गरिमा को तो खंडित किया ही, इसे अन्दर और बाहर से असुरक्षित भी बना दिया। देश की छवि को घूलि धूसरित कर दिया। आज भारत की जनता दुनिया की नजरों में कायर, मजबूर दब्बू बन गई। सदियों से संसार को प्रेम, शान्ति, सहिष्णुता और सद्भावना के सन्देश देने वाले भारत को आज यूरोपीय समुदाय के देश नसीहत देने चले हैं। "जीओ और जीने दो" के मन्त्र को स्वयं सिद्ध करने वाले देश को अब स्वयम्भू दरोगे सहिष्णुता का पाठ पढ़ाने की हिमाक़त कर रहे हैं। शैतान और शातिर दिगाम वाले फिर से भारत को गुलाम बनाने का साजो सामान तैयार कर रहे हैं। आज हिन्दू अपने ही घर में असुरक्षित हैं, उपेक्षित हैं, अपमानित और आतंकित हैं। हिन्दुत्व किसी विशेष जाति, मत, सम्प्रदाय का नाम नहीं, बल्कि यह तो एक भू-सांस्कृतिक अवधारणा है। भारतीयता के बिना हिन्दुत्व नहीं, हिन्दुत्व के बिना भारतीयता नहीं। खेद का विषय है कि हिन्दुत्व की सहिष्णुता और उदारता को दुर्बलता

समझा गया। बलात् धर्मांतरण के द्वारा राष्ट्रान्तरण और अखण्डता को भुगतना पड़ रहा है। गोधरा में क्या हुआ? साबरमति ऐक्सप्रैस की बोगी में 60 जीवित लोगों को चिताग्नि दी गई। मासूम, मज़लूम, निरीह बच्चों, बूढ़ों, स्त्री-पुरुषों की होली जलाई गई। दयानन्द और गाँधी का गुजरात धू-धू करके जल उठा। फसाद हुए, हो रहे हैं, दंगे थमने का नाम नहीं ले रहे। सामुदायिक उन्माद और जेहादी जुनून क्रूर नर संहार करवा रहा है, हिंसा का नग्न नर्तन हो रहा है, इंसानियत रो रही है, हैवानियत भी शर्मिन्दा है। दुःख की बात यह है कि वोटों की लोभी मानसिकता यहाँ भी लाशों पर राजनीति कर रही है। मानवता की चिताग्नि पर भी स्वार्थ की रोटियाँ सेंकी जा रही हैं। छद्म धर्म निरपेक्षता के ठेकेदार भारत की अस्मिता का सौदा कर रहे हैं। हिन्दुत्व की, भारत की गरिमा की धज्जियाँ उड़ा रहे हैं, देश की छवि धूमिल कर रहे हैं। छाज तो बोले, आज छाननियाँ भी चिल्ला रही हैं, जिनमें असंख्य छेद हैं। 'सिमी' जैसी (प्रतिबन्धित-भूमिगत) संस्था का समर्थन करने वाले आई.एस.आई. से जुड़े तारों वाले दल भी बोलने की हिम्मत कर सकते हैं? देश के दुश्मन इन जयचन्दों और मीरजाफरों को बेनक़ाब करने का अभियान चलाना होगा। पन्थ निरपेक्षता को शुगल बनाने वालों का दुमुँहापन देखो। जिन्दा जलाए गए लोगों के प्रति इतने संवेदनहीन कि होंठ भी न खुले और वोटों के गुलाम, तुष्टीकरण करने में इतने विक्षिप्त कि छाती पीटते न थके। सभी का जीवन कीमती है, खून किसी भी समुदाय का हो, उसका रंग एक होता है। आज हमें संघर्ष करना है अन्दर से भी और बाहर से भी। आज देश चारों ओर से संकटों से घिरा है, उत्तर सुलग रहा है, पश्चिम जल रहा है, पूर्व सुगबुगा रहा है, दक्षिण भड़क रहा है। जेहादी आतंकवाद, उल्फा उग्रवाद, माओवादी नक्सली एम.सी.सी, पी.डब्लू.जी. आदि हिंसा का ताण्डव कर रहे हैं, देश

की स्वतन्त्रता खतरे में है। अब तो "संग्राम महान भीषण होगा, याचना नहीं अब रण होगा" की तर्ज पर लम्बी लड़ाई लड़नी होगी। एतदर्थ वीर विनायक दामोदर सावरकर ने भारतीय छात्रों के सैनिकीकरण पर बल दिया था। देश की सीमाओं की सुरक्षा-हेतु देश के नौजवान तैनात हैं, उन्हें भरपूर समर्थन, प्रोत्साहन, सहयोग देना होगा। सैन्य शक्ति को चुस्त-दुरुस्त करने के साथ पुलिस प्रशासन को भी चाक चौबन्द करना होगा। आतंकवादी तो ए.के. 47 ए.के. 56, राकेट लांचर, बारूदी सुरंगे बिछाने की आधुनिक तकनीक से लैस हैं, हमारी पुलिस के पास पुराने मॉडल की जंग लगी बंदूकें हों, कैसे साम्मुख्य होगा?

समय आ गया है शहीदी रक्त में उबाल आए। '1857-स्वातन्त्र्य समर' जैसे ओजस्वी देशभक्ति साहित्य का फिर से सृजन हो, अनुशीलन हो, 'अभिनव भारत' जैसी संस्थाएँ भारत की नई पौध को राष्ट्र-भक्ति के जज्बे से लबरेज़ कर दें। प्रसन्नता और सन्तोष की बात है। आर्यवीर दल, आर्ययुवक समाज जैसे संगठन देश की नई पीढ़ी को तैयार करने में भूरपूर योगदान कर रहे हैं। आज आवश्यकता है स्वामी श्रद्धानन्द और स्वामी दर्शनानन्द जैसे गुरुकुल अधिष्ठाताओं के उत्साह और अध्यवसाय की जिससे हमारी शिक्षण संस्थाओं में मानव बम (शक्तिशाली देशभक्त नौजवान छात्र) तैयार हों जिनसे शत्रु थरथरा उठे। आज देश के रंगमंच पर लाला हरदयाल, श्यामजी कृष्ण वर्मा, भाई परमानन्द, मदनलाल ढींगरा, उधमसिंह, बिस्मिल, भगतसिंह, अशफाक जैसे बलिदानी वीरों को अवतरित करना होगा। आजादी को गिरवी रखने वाले इन नौटंकी वालों से पूरा हिसाब किताब करना होगा। इन राजनैतिक शिखण्डियों ने भारत के संविधान रूपी भीष्म पितामह को रक्तरंजित करके शरशैय्या पर लिटा रखा है, इसके लिए गाण्डीवधारी अर्जुनों की प्रतीक्षा है। इन चोर,

डकैतों अपराधियों, तस्करों, माफिया गिरोहों से देश की रक्षा करनी होगी। यह तभी संभव होगा जब देश की नई पीढ़ी सबल होगी, सशक्त होगी, देश-भक्ति की भावनाएँ जोर मारेंगी, वैरी से लोहा लेने के लिए भारतीय सपूतों की भुजाएँ फड़क उठेंगी। अन्याय, अत्याचार जुल्म-ओ-सितम से टक्कर लेने के लिए वैदिक संस्कृति का आदर्श है-

अग्रतः चतुरोवेदान्, पृष्ठतः सशरं धनुः।
इदं शास्त्रमिदं शस्त्रं शापादपि, शरादपि।।

सामने चारों वेद हों पीठ पर वाण सहित धनुष हो, यह (इधर) शास्त्र हो, यह (इधर) शस्त्र हों, तर्क से भी, तीर से भी। (ब्रह्म तेज के साथ क्षात्र तेज भी आवश्यक है। राष्ट्र की अस्मिता (संस्कृति, कला, साहित्य, भाषा) की रक्षा हेतु देशवासियों को सर्वतः सन्नद्ध रहना होगा। याद रहे, राष्ट्र-द्रोह से बढ़कर कोई बड़ा पाप, अपराध नहीं। राष्ट्र रक्षा के संकल्प से बढ़कर कोई संकल्प नहीं। कायर दुर्बल बनकर मानसिक गुलामी से ग्रस्त रहेंगे तो रगों का खून पानी बन जाएगा। रक्त-पात, हिंसा, युद्ध कभी भी, किसी भी रूप में हितकर नहीं किन्तु जब शत्रु द्वारा वार पर वार हों तो धैर्य और सहन-शक्ति की भी कोई सीमा होती है। सेर पर सवा सेर क्यों न हों? बार-बार उपस्थित होने वाली चुनौतियों का यदि डट कर वीरतापूर्वक सामना नहीं करेंगे तो आने वाली पीढ़ियाँ हमें माफ नहीं करेंगी। जब माँ की आबरू पर अन्दर और बाहर से घात-प्रतिघात किए जा रहे हों तो माँ के सपूतों का क्या कर्त्तव्य हो सकता है? कवि 'नीरज' के शब्दों में-

दे रहा है आदमी का दर्द अब आवाज दर-दर।
अब न जागे तो कहो सारा जमाना क्या कहेगा?
जब बहारों को खड़ा नीलाम पतझड़ कर रहा है
तुम कहीं फिर भी उठे तो आशियाना क्या कहेगा?

ए/25 बी, नेहरू ग्राउंड, न्यू टाउन, फरीदाबाद

(14 सितंबर – हिन्दी दिवस पर)
पहले ठीक से देश की भाषा तो बन जाए हिन्दी
(एक साक्षात्कार)

–तेजेन्द्र शर्मा

लंदन में रहने वाले भारतीय मूल के वरिष्ठ कथाकार तेजेंद्र शर्मा को उनके हिन्दी लेखन के लिए ब्रिटेन की महारानी द्वारा ब्रिटेन के 'मेंबर ऑफ द ऑर्डर ऑफ द ब्रिटिश एंपायर' सम्मान के लिए चुना गया है। इस अवसर पर उनसे उनके व्यक्तित्व व कृतित्व से जुड़े विविध पहलुओं पर बातचीत की युवा लेखक पीयूष कुमार ने प्रस्तुत हैं अंश:-

एक अंग्रेजीभाषी देश में हिन्दी लेखन के लिए सम्मानित होना कैसा लगा?

जाहिर है अपने अपनाए हुए देश द्वारा अपने हुनर को सम्मानित होते देखकर सुखद अनुभूति होती है। मैं इस सम्मान को केवल अपना निजी सम्मान नहीं मानता। मेरे लिए महत्त्वपूर्ण यह है कि मेरे माध्यम से हिन्दी साहित्य के लिए एक नया द्वार खुला है। ब्रिटेन की सरकार ने पहली बार किसी हिन्दी लेखक को उसके हिन्दी साहित्य में अवदान के लिए सम्मानित किया है। पहले केवल सलमान रश्दी, वी.एस. नायपॉल और विक्रम सेठ जैसे अंग्रेजी लेखकों की ओर ध्यान रहता था। आज ब्रिटेन के हिन्दी लेखकों के लिए एक नया रास्ता तो बना ही है, इस रास्ते पर अन्य भारतीय भाषाओं यानी गुजराती, बंगाली और उर्दू के लेखक भी चल पाएँगे। हालाँकि ब्रिटेन की सरकार बांग्ला को बांग्लादेश और उर्दू को पाकिस्तान की भाषा मानती है।

भारत में पुरस्कारों के परिदृश्य पर आपकी क्या राय है?

देखिए भारत में साहित्य बहुत से खेमों में बँटा है। पुरस्कारों पर भी तो उसका असर पड़ेगा ना। मेरी समस्या यह है कि मैं किसी भी राजनीतिक धड़े से नहीं जुड़ा हूँ। इसलिए किसी का सगा नहीं हूँ। मगर यह भी सच है कि कोई साहित्यकार सम्मानों और पुरस्कारों के लिए नहीं लिखता है कि कभी न कभी कुछ ऐसे लेखकों को भी याद किया जाएगा, जो बाएँ और दाएँ दोनों हाथों से काम लेते हैं।

प्रवासी हिन्दी साहित्यकारों को लेकर भारत के साहित्यकारों का एक धड़ा पूर्वाग्रह से ग्रस्त नज़र आता है। आज आपको यह सम्मान मिला है, इस मौके पर उन साहित्यकारों के लिए कुछ कहना है?

सच तो यह है कि अधिकांश भारतीय लेखक अपने गुट विशेष के लेखकों या मित्रों द्वारा लिखी गई रचनाएँ ही पढ़ते हैं। वहाँ एक रिवाज़ है कि बिना पढ़े ही किसी को नकार दिया जाए या चढ़ा दिया जाए। 'तिरछी' लिख कर उदय महान लेखक बन जाता है, मगर दक्षिणपंथी नेता से पुरस्कार लेने पर दुत्कार दिया जाता है। राजेन्द्र यादव तो प्रवासी साहित्य को कचरा घोषित कर चुके थे। मगर वह बड़े इंसान थे। जब उन्होंने मेरा लेखन ठीक से पढ़ा तो उन्होंने मुझे भारत की मुख्यधारा का लेखक माना और कहा कि मैंने हिन्दी साहित्य को कुछ अछूते और नए विषय दिए हैं। मैं साहित्यकारों से केवल इतना ही कहना चाहूँगा कि बिना पढ़े फतवे जारी करके कहीं वे अपने आपको उन मौलवियों के साथ न खड़ा कर लें जो फतवे जारी करते रहते हैं।

अपने निजी जीवन के बारे में कुछ बताएँ।

भाई अब निजी क्या है, जो है एक खुली किताब है।

लंदन के एक छोटे से फ्लैट में अकेला रहता हूँ। बेटी दीप्ति मुंबई में टीवी कलाकार है और बेटे मयंक और ऋत्विक नौकरियाँ कर रहे हैं। कथा यूके के माध्यम से हिन्दी की गतिविधियाँ करता हूँ और अपने लैपटॉप से साहित्य की रचना। भारत में बहुत से मित्र हैं जो बहुत प्यार देते हैं। ऐसे कुछ मित्र ब्रिटेन में भी हैं। हाँ, जाकिया जुबैरी जी का मार्गदर्शन किसी भी तरह की कठिनाई में राह दिखा देता है।

फिलहाल हिन्दी की वैश्विक स्तर पर क्या स्थिति है और इसके लिए क्या संभावनाएँ दिखती हैं?

वैश्विक भाषा बनने से पहले किसी भी भाषा के लिए महत्त्वपूर्ण है कि वह अपने देश की भाषा बने। भारत में तो हिन्दी, भाषा से बोली की ओर यात्रा पर अग्रसर है, तो भला वैश्विक स्तर पर हम क्या अपेक्षाएँ रख सकते हैं? जब तक हिन्दी भारतीय संसद की पहली भाषा नहीं बन जाती और केवल अनुवाद की भाषा नहीं बनी रहती, तब तक मैं वैश्विक स्तर पर उसके लिए कोई भविष्य नहीं देख सकता।

हिन्दी साहित्य, विशेष रूप से हिन्दी के कथा साहित्य की समकालीन स्थिति और चुनौतियाँ क्या हैं?

कथा साहित्य की स्थिति तो बहुत ही संतोषजनक है। आज बहुत सी पीढ़ियाँ लगातार सक्रिय रूप से लिख रही हैं। यदि एक ओर मृदुला गर्ग, चित्रा मद्‌गल, ममता कालिया, नासिरा शर्मा सक्रिय हैं तो दूसरी ओर अखिलेश, देवेंद्र, संजीव, तेजिंदर गगन, सूरज प्रकाश, हरि भटनागर भी लगातार लिख रहे हैं। मैं मनीषा, वंदना राग, अजय नावरिया, विवेक मिश्र, गीताश्री, रजनी मोरवाल, पंकज सुबीर, प्रेम भारद्वाज आदि की कहानियों पर निगाह रखता हूँ। वैसे सभी का नाम देना संभव नहीं, मगर मैं नई पीढ़ी से पूरी तरह आश्वस्त हूँ।

बोलियों से जुड़कर ही बचेगी हिन्दी
(हिन्दी दिवस पर)

–कुमार नरेन्द्र सिंह

इसमें कोई संदेह नहीं कि हिन्दी कम समय में ही अपना एक संसार रचने में सफल रही है। प्रसार और विस्तार के मामले में वह सभी भारतीय भाषााओं में अव्वल है। लेकिन उसकी सफलता किसी फिल्मी नायिका की सफलता जैसी ही है, जो सजी-संवरी और खूबसूरत जरूर दिखाई देती है, पर आम कलाकारों की जिंदगी में कोई चमक पैदा नहीं कर पाती, न ही उनसे अपना कोई रिश्ता जोड़ पाती है। अन्य भारतीय भाषाओं की बात कौन करे, हिन्दी पट्टी में भी यह लोगों के दैनिक कार्यकलाप का हिस्सा नहीं बन पाई है। अवधी, भोजपुरी, मगही, मैथिली, कुमाऊँनी, ब्रज आदि बोलियों में खुद को व्यक्त करना आज भी लोगों को ज्यादा स्वाभाविक लगता है।

विविधता से परहेज

इसका एक कारण यह समझ में आता है कि हिन्दी विभिन्न सांस्कृतिक परंपराओं की वाहक बनने में, या उनके नए भावनात्मक प्रतीक खड़े करने में विफल रही। भाषा के साथ धर्म की तुलना का कोई सीधा मतलब नहीं है, लेकिन मामला विविधता को अंगीकार करने का हो तो यह तुलना विषय से हटी हुई नहीं समझी जाएगी। जैसे, हिन्दू धर्म में 12 दर्शनों के लिए एक आवरण प्रदान किया जिनमें आधे आस्तिक और आधे नास्तिक दर्शन हैं। हाल तक इस धर्म में इन सभी के लिए सह-अस्तित्व की गुंजाइश थी। एंकेश्वरवाद, द्वैतवाद, त्रिवेदवाद, जीववाद, चेतनवाद और पूर्वज पूजा के साथ-साथ अन्य सभी प्रकार की पूजा के लिए भी हिन्दू धर्म ने अपने भीतर जगह बनाई। लेकिन इस तरह की विविधताओं को अपनाने में हिन्दी भाषा बुरी तरह विफल रही है।

वस्तुतः इसके लिए हमारे हिन्दी के पैरोकार ही जिम्मेदार नजर आते हैं। इन लोगों ने हिन्दी के प्रसार को भारतीयकरण के

रूप में नहीं, बल्कि हिन्दूकरण के रूप में व्याख्यायित किया, हालांकि इस क्रम में वे हिन्दू धर्म को भी संकीर्ण से संकीर्णतर बनाते चले गए। इसका नतीजा यह हुआ कि हिन्दू समाज से बाहर के लोगों के साथ-साथ स्वयं हिन्दी समाज के हाशिए पर रहने वाले लोग भी हिन्दी की पहचान के न जुड़ पाने के चलते यह भाषा उन नेताओं के हाथ का हथियार बनकर रह गई, जिनका मकसद हमेशा समाज में कोई न कोई विभेद पैदा करके ही पूरा होता है। हिन्दी को अंग्रेजी और अन्य भारतीय भाषाओं से लड़ाकर उन नेताओं का जो भी भला हुआ हो, पर हिन्दी के साथ अपनी पहचान जोड़ने की चाहत रखने वालों को तो नुकसान ही हुआ।

अपने उद्भव से लेकर आज तक हिन्दी एक कृत्रिम भाषा ही बनी रह गई। वाक्य विन्यास से लेकर शब्दावली तक सब कुछ उधार का। लोक और विदेशी भाषाओं के शब्द निकाल दिए जाएँ तो ह्वीलचेयर पर जाती दिखे। विडंबना यह कि जिन लोक भाषाओं के बल पर हिन्दी शक्तिशाली बनी, उनको देने के लिए इसके आंचल में कभी कुछ नहीं रहा। लोक भाषाओं की समृद्धि से वह स्वयं तो समृद्ध बनती गई, लेकिन उन्हें समृद्धि बनाने का उसने कोई यत्न नहीं किया। इतना प्रचार-प्रसार के बावजूद क्या हिन्दी के पास एक भी ऐसा कवि है, लोगों के मन पर जिसके कहने की छाप सूर, तुलसी, जायसी, बिहारी, केशवदास, रसखान, नानक, बुल्लेशाह जैसी हो? भिखारी ठाकुर और महेन्दर मिसिर जैसे नाटककार और गीतकार भी हिन्दी में नहीं हुए जिससे हिन्दीभाषियों का भावनात्मक एका स्थापित हो सके।

इसका सबसे बड़ा कारण हिन्दी का लोकजीवन से कटा होना प्रतीत होता है। हिन्दी के साहित्यकारों ने इसको विशिष्ट जन की भाषा बनाकर छोड़ दिया और इन विशिष्ट जनों ने जब अंग्रेजी का दामन थामने का फैसला कर लिया तो भरे बाजार में हिन्दी अकेली, खाली हाथ दिख रही है। लोकभाषाओं को गँवारों की भाषा मानने का आग्रह न होता तो ऐसी नौबत

कतई न आती। शहर की सड़कें छोड़कर हिन्दी गाँवों की गलियों-पगडंडियों पर चलने से कतराती रही। इस प्रक्रिया में वह आमजन की जिंदगी से दूर होती गई। हिन्दी के साहित्यकारों ने लोकपक्ष की ऐसी अवहेलना की कि वह स्पंदनहीन होकर रह गई।

हिन्दी के साहित्यकारों और अध्येताओं को सोचना होगा कि आखिर इसमें झूमर, कजरी, बारहमासा, बिरहा, फगुआ-चैती, रोपनी-सोहनी और बुआई के गीत क्यों नहीं रचे गए? सोरठी-बृजभार, कुंआर विजयमल, आल्हा, लोरिकायन जैसे गेय काव्य की रचना करने में वह क्यों असफल रही? विभिन्न पर्व-त्योहारों के गीत हिन्दी में क्यों नहीं लिखे गए? हिन्दी ने मुद्रित साहित्य के स्तर पर निश्चित रूप से अपने लिए एक खास मुकाम बनाया है। कहानी, आधुनिक कविता, उपन्यास आदि में अपनी अमिट छाप भी छोड़ी है। लेकिन इसका दूसरा पक्ष यह है कि ज्ञान-विज्ञान, दर्शन, मेडिकल साइंस, इंजीनियरिंग आदि के क्षेत्र में वह दूर-दूर तक कहीं चलन में नहीं है। विश्वविद्यालय स्तर की पढ़ाई के लिए हिन्दी में सामग्री जुटाने की बात अब अकेडमिक अजेंडा से ही बाहर हो चुकी है।

दृष्टि कहाँ है

क्या अब से डेढ़ सौ साल पहले, उन्नीसवीं सदी में हिन्दी का बिरवा रोपते हुए भारतेंदु हरिश्चन्द्र और प्रताप नारायण मिश्र आदि ने ऐसी ही भाषा की कल्पना की होगी? कतई नहीं। हिन्दी को एक ऐसी भाषा के रूप में विकसित किया जाना था जो हमारी संपूर्ण सांस्कृतिक विरासत को कायम रखते हुए उसको आगे बढ़ा सके। लेकिन आज इसका जो स्वरूप उभर कर सामने आया है, उसमें न भविष्य के अंकुर दिखते हैं, न ही अतीत को सहेजने का धीरज। पूरे देश में फिल्मी हिन्दी का बोलबाला है, जिसकी अपनी कोई दृष्टि नहीं है। हिन्दी में अगर कोई नई उम्मीद जगानी है, तो यह तभी संभव है, जब लोकभाषाओं के साथ उसका जीवंत संवाद बनाया जाए।

धन्य है ये भारत माँ के लाल
(गाँधी व शास्त्री की जयन्ती पर विशेष)

-दिव्या आर्य

अक्तूबर मास दो महान आत्माओं की प्रेरक स्मृतियों को सहसा ही मानस पटल पर उभार देता है। ये वरेण्य पुरुष थे महात्मा मोहनदास कर्मचन्द्र गाँधी और शरीर से लघु किन्तु कृति से विशाल भारत माता के शत्रुजयी लाल अर्थात् श्री लालबहादुर शास्त्री।

देश ने महात्मा गाँधी के रूप में सरलता और सौम्यता का एक ऐसा साकार रूप पाया था कि जिसने अपने प्रेरक जीवनव्रत से तन्द्राग्रस्त भारत को जगाया था। अनेक उन्हें आज राष्ट्र-पिता की संज्ञा प्रदान कर अपनी श्रद्धा का वितान तानते हैं, किन्तु गाँधी स्वयं को भारतभूमि के प्रति पूर्णतः समर्पित मातृभक्त ही मानते थे। उन्होंने जिस राम को अपने जीवन का आदर्श माना था, उसने भी स्वयं को इस आर्यभूमि का एक विनयशील पुत्र मानकर आर्यपुत्र कहलाने में ही स्वयं को बधन्य माना था। उसने अपनी जीवनधारा का दो टूक वर्णन उस समय किया था, जब भ्राता लक्ष्मण का मन स्वर्णपुरी लंका के वैभव को निहार कर उसके प्रति अनुरुक्त हो उठा था और मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम ने यह उद्घोष किया था-

आर्य स्वर्णमयी लंका, लक्ष्मणं न रोच्यते।
जननी जन्मभूमिश्च, स्वर्गादपि गरीयसी।।

उस राम का पावन नाम महाप्रयाण की बेला में भी जिसकी वाणी से उच्चारित हुआ, उस गाँधी के अनुयायी आज उनके मानस, उस चिन्तन को विसार कर गाँधी और गाँधीवाद का नामोच्चार मात्र करने में ही अपने कर्त्तव्य की पूर्ति मान बैठे हैं। गाँधी जी के दर्शन को सर्वकालिक और सम्पूर्ण सत्य मानने के तो हम पक्षधर नहीं, उनके प्रत्येक कथन को 'ब्रह्म वाक्यम् प्रमाणम्" मान लेना हमारी नीति नहीं, उनके द्वारा अपने जीवन में लिए गए अनेक निर्णय हमारी दृष्टि से ऐतिहासिक भूल सिद्ध हुए हैं किन्तु सत्य को हम अस्वीकार नहीं कर सकते कि गाँधी जी के जीवन का हर क्षण इस राष्ट्र के लिए समर्पित था। उनके जीवन का एक प्रेरक सूत्र था। अपनी मान्यताओं के प्रति पूर्ण समर्पण की भावना। उन्हें जो कुछ सत्य लगता था, उसे सुस्पष्ट शब्दों में कह देने के वे पक्षधर थे। उन्होंने स्वदेह को सदैव ही तुच्छ माना था। अतएव देह-रक्षकों की नियुक्ति के प्रलोभन से सदैव ही दूर रहे। मृत्यु भय को उन्होंने कभी अपने समीप नहीं फटकने दिया। अपने सिद्धान्तों के प्रति अनन्य निष्ठा गाँधीजी के जीवन का एक ऐसा प्रेरक अध्याय है कि जो किसी भी राष्ट्रभक्त के लिए अनुकरणीय है। उनका यह कथन हम सभी के लिए प्रेरक है- "मृत्यु से डरने का कोई कारण

ही नहीं। क्योंकि यह सब ईश्वर के ही हाथ में हैं। हमसे जब तक वह देना लेना चाहेगा, उस क्षण उठा लेगा। इसलिए जो सत्य लगता है, वही करना हमारा धर्म है।" गाँधी जी का यह कथन हमारे लिए आज भी प्रेरक है और हमें प्रेरित करता है, अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते जाने के लिए, पथ के अवरोधों, बाधाओं और आपदाओं से टकराने के लिए। उनके पावन जन्मोत्सव की शुभ बेला पर हम संकल्प ग्रहण करें स्वराष्ट्र की रक्षार्थ सतत् जाग्रत् रहने का, राष्ट्र को जगाने का। गाँधी का प्रेरक श्रीराम का जीवनव्रत था। वेद के इस महान उद्घोष के अनुरूप 'वयं राष्ट्रे जागृयामः और जिस दूसरे महामानव की पावन स्मृति यह मास दिलाता है, वह वस्तुतः एक ऐसा व्यक्तित्व था जिसने अपने कृतित्व से राष्ट्र के इतिहास में विजय का एक अध्याय जोड़ा था। जिसने हिन्दुस्तान की अस्मिता को चुनौती देने वाले दुष्ट आक्रान्ताओं को अपने सफल दिशा निर्देशन से रणभूमि में धूल चटाई थी। जिसे पाकर परमपुनीता भव्यभूमि निहाल हो उठी थी और जिस लाल ने अपनी बहादुरी से शास्त्रों के इस महान उद्घोष को चरितार्थ किया था "शस्त्रेण रक्षिते राष्ट्रे शास्त्र चर्चा प्रवर्तते" इस आह्वान को उसने अपने प्रधानमंत्रित्व काल में अपने क्रियाकलापों से साकार कर यह सिद्ध कर दिखाया था कि वह नाम मात्र के नहीं अपितु वास्तविक अर्थों में शास्त्री हैं। उसने विश्व के मानचित्र पर एक समरजयी भारत का प्रेरक चित्र उभारा था। उसने इस सत्य को अपने क्रियाकलापों से साकार कर दिखाया था। जो भारत शान्ति का शाश्वत सन्देश संसार में प्रसारित करना अपना पावन दायित्व मानता है, वह महाभारत को भी सिरहाने रखकर सोता है। उसने जहाँ "वसुधैव कुटुम्बकम्" के महा लक्ष्य के प्रति अपनी पूर्ण आस्था व्यक्त की थी। जब कोई दस्यु वहीं इस तथ्य को भी विश्व के समक्ष उजागर कर दिया था कि जब कोई शत्रु हमारी अस्मिता को चुनौती देता है, जब कोई दस्यु भारतमाता की ओर कुदृष्टि का दुस्साहस अपने नेत्रों में संजोता है तो योगेश्वर श्रीकृष्ण का यह देश गीता के इस पावन सन्देश का स्मरण कर निर्द्वन्द्व होकर समरांगण में उतरने में संकोच नहीं करता "हतो वा प्राप्यसि स्वर्गं जित्वा वा मोक्ष्यसे महीम् (अर्थात् मरने पर स्वर्ग मिलेगा, जय पाने पर भूतल का राज) वह शत्रुजयी, कालजयी महापुरुष लालबहादुर शास्त्री हमारी श्रद्धा के अनन्य पात्र हैं। हमें उनका पावन जीवन प्रेरणा दे रहा है कि हम संकल्प ग्रहण करें कि 'राष्ट्र की अस्मिता अखंडता और सुरक्षा के लिए चुनौती देने वालों के नख और विषदंत्त तोड़ने के लिए शान्ति उपासक भारत पुत्र अपना समरजयी रूप दर्शाने के लिए भी सदैव सन्नद्ध रहते हैं।

वेद मन्दिर, इब्राहिमपुर

FIVE SUTRAS FOR 2018

(The holistic philosophy of Vedanta is urgently needed at this critical juncture)

-Karan Singh

The final Sutra I would like to present is Bahujan Sukhaya, Bhaujana Hitaya Cha- the welfare of the many, the happiness of the many. There is a general misconception that Vedanta involves only a quest for personal salvation wihtout a concern for the larger social welfare. There have been many definitions of socialism, but it seems to me that this Sutra beautifully expresses the basic ideal that every individual should be happy.

I am aware that religion is not the same as philosophy, but at least for most of us in Asia, there has always been a close linkage between the two. We do not look upon philosophy merely as an intectual exercise, but as a quest for wisdom and enlightenment. It is in this context that I wish to place before the World Congress of Philosophy a set of five Sutras- cryptic statements compressing a wealth of meaning, based largely on Hindu Vedantic philosophy. Between them, I believe they give us a roadmap for addressing the multiple problems that humanity faces today.

The first Sutra is from the Ishavasya Upanishad, Ishavasyam Sarvam Yatkinchit Jagatyam Jagat- this whole cosmos is illuminated by the same divine power. Whether it is the stately waltz of the galaxies or the frenetic rock-and-roll of subatomic particles so powerfully symbolised by the Shiva Nataraja, all over their existence to the divine force the Upanishads call Brahman. This represents the phillosophical correlate of the Unified Field Theory that scientists are desperately looking for to explain the multiple phenomenon in the cosmos and probe further into the power that subsumes all that exists, has existed or will exist.

Flowing from this is a Sutra from the Gita, Ishwara Sarbutanam Hriddeshe Tishthati–the divine power resides in the heart of all beings: This is tremendously important because if divinity was not seated in our hearts there would be no way we could approach or experience it. While all creatures possess divinity,

it's only with the emergence of the human race that there is a species which is self-conscious and can, therefore, embark on a spiritual quest. Each human being encapsulates a spark of the divine–known as the Atman.

The joining of the Atman and the Brahman involves raising our conciousness to a radically elevated trans-rational level of awareness.

Let us now turn to Vasundhaiva Kutumbakam, the well-known Sutra which describes the human race as a single family. It is only in our lifetimes that science and technology have actually given us the capacity to break out of the confines of the earth, reach the moon and explore the planets and the stars. They have given us instant communication, the internet, television and a vast array of technological instruments that have indeed made the world potentially a single unit. However, it is astonishing that thousands of years ago, our seers had realised that in the final analysis, the human race must be looked upon as a single family.

The fourth Sutra is from the Rigveda-Ekam Sadvipraha Bahudha Vadanti-the truth is one, the wise call it by many names. If Vasudhaiva Kutumbkam is the keynote of the global society, this Sutra is the keynote of the Interfaith Movement, which began in 1893 with the Parliament of World Religions in Chicago where Swami Vivekananda made such a dramatic impact. To assume that there is only one path is unacceptable. Who are we, creatures on a tiny speck of dust, to lay down that the illimitable splendour of the Divine can appear only in one form?

The final Sutra I would like to present is Bahujana Sukhaya, Bahujana Hitaya Cha- the welfare of the many, the happiness of the many. There is a general misconception that Vedanta involves only a quest for personal salvation without a concern for the larger social welfare. In fact, the last three Sutras mentioned here directly address the welfare of humanity at large. This one is of particular importance because it stresses that apart from continuing our inner efforts to join Atman and Brahman, we should be working for the welfare of society.

There have been many definitions of socialism, but it seems to me that this Sutra beautifully expresses the basic ideal that every individual should be happy. Taken together, these five Sutras represent a holistic pholosophy, which is urgently needed at the present critical juncture of human history. That is the message I would like to convey to the distinguished gathering at the World Congress of Philosophy, which has brought together thinkers and intellectuals from around the world to this ancient and dynamic civilisation that is China.

BRAHMASHA INDIA VEDIC RESEARCH FOUNDATION ACKNOWLEDGES WITH THANKS RECEIPT OF THE DONATION of Rs. 1100/- from Shri Deepak Dawar, C3A/194A, Janakpuri, New Delhi-58.

Donations to the Foundation are eligible for Tax Exemption under Section 80G of the Income Tax Act 1960 Vide No.DIT(E)1/3313/DELBE 21670-2503210 dated 25.03.2010

Date of Pubn. : 30.9.2018 Posted at - NIE - H.O. Postal Date : 2-3 Oct. 2018
RNI Reg. No. DELBIL/2007/22062 Postal Regd. No. DL(W) 10/2143/2017-2019

ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य बोधि तनयं च जिन्व।
विश्वन्तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः।
या इमा विश्वा। विश्वकर्म्मा। यो नः पिता अन्नपतेऽन्नस्य नो देहि।।
(यजु. 34-58)

ऋषिः- गृत्समदः, देवता-ब्रह्मणस्पतिः, छन्दः-निचृत् त्रिष्टुप्
हे जगत् के मालिक, आप सारे संसार के नियंत्रक हो। आप हमारी भी प्रार्थना सुनें। न केवल हमें परंतु हमारी संतानों को भी विद्यायुक्त कीजिए। विद्या ही हमारी सुरक्षा करेगी। हमें ऊर्जा, खाद्य पदार्थ और समृद्धि मिलने का आशीर्वाद दें।

O lord of universe, you are the controller of the world. You listen to our prayers. Bless us knowledge, not to us only but to our progeny as well. Knowledge is our protection. Bless us with energy and food, protect and promote us. (Yajurved 34-58)

Printed by - Friendsprintofast, New Delhi-58